अग्निवृक्ष

मराठी लेखिका -- वैशाली पंडित

अनुवाद -- लीना मेहेंदले

चूल्हे में लकडियाँ सरकाकर रेखा फिर रोटी बेलने के लिये झुक गई । चूल्हा अब सनसनाकर जल रहा था। हरी चूडियोंसे भरे - भरे हाथ वृत्ताकार घूम रहे थे । बेलन के नीचे चाँद सी गोल गोल रोटियाँ बन रही थीं।

चूल्हे की लपटें लम्बोतरे आकार में ऊर्ध्वस्वल हो रही थीं। ठीक ऐसी ही है लम्बोतरे आकार में उस पेड की जडें भी । लेकिन पेड के तने से फूटी वे जडें जमीन के अंदर धंसी जाती थीं - ये अग्निशिखाएँ ऊपर जानेको ललक रही थीं।

"ऐ बहू, बनी नहीं अभी तेरी रोटियाँ ? यहाँ पंगत रूकी हुई है । ले आओ, रोटी परोसो।

पैर पटकती हुई सास भाजी का बर्तन उठाकर बाहर आई । रेखा भी रोटियोंका डब्बा लिये उसके पीछे लपकी ।

उस छोटे से शहर में नई नवेली दुल्हन बनकर अभी हाल में ही तो आई है रेखा । पती दिनू - या दिनकरराव, भोजन की 'मेस ' चलाता है। तीर्थ का क्षेत्र है । मनौती माँगने और समुद्र - स्नान से मनौती पूरी करने के लिये सैकडों ब्राह्मण पुरुष आते है । 'भोजन -गृह ' को ग्राहकों की कमी नहीं है । कमी थी काम करनेवाले हाथों की ! ऐसे हाथ जो काम भी करें और मेहनताना भी न माँगे ।

लंबी पंगत में ग्राहकोंको रोटी परोसते हुए रेखा अब भी गडबडा जाती है । और इधर तो उसके दिलो-दिमाग में वह पेड छाया हुआ है । उसकी पतली पतली जडों ने जमीन में गहरे उतरने से पहले पेड के तने पर जो नक्काशी की है, रेखा की आँखों में वही नक्काशी नाच रही है । साथ ही उस पेड का सुडौल आकार !हवा में मंद मंद झूलती रहनियाँ । बाकी सारी झाडी-झंखडियोंके बीच दूर से ही उस पेड ने रेखा को बरबस अपनी ओर खींच लिया था ।

"बहू !"

सास की धमकी भरी आवाज से रेखा अचानक बौखला गई । सच तो है, अपने ही खयालों में खोकर वह एक ही ग्राहक के सामने रुक गई थी और उसकी थालीमें चार रोटियाँ डाल चुकी थी - ग्राहक भी उसकी ओर कुछ शंका की नजर से ताक रहा है - दिमाग से ठीक-टाक तो है यह लडकी ? लेकिन सबसे बुरा यह कि अंदर से बैठक की चौखट लांधकर दिनू अब उसे बुला रहा है । क्रोध से उसकी आँखे उफन रही हैं । "माई मेरी !" रेखा नख-शिख तक थरथरा गई । पैरों में थोडी ताकत जमा कर किसी तरह बैठक घर में पहुँची ।

"कान के नीचे बजा दूँगा फिर किसी ग्राहक को तकती रही तो !" बन्दूक की गोलियों की तरह शब्द दाग कर वह चल दिया पानी परोसने को ।

रेखा सहम गई । फिर चुपचाप रसोईघर में वापस आई । एक एक चीज समेटती रही। मन को रोकते - रोकते भी यादें आती रहीं - लुढकती रहीं . . . ।

सात बहन-भाईयों का घर ! गरीबी की मार। रेखा ही सबसे बडी इसलिये घर की हालात को सबसे अधिक समझनेवाली ! संवेदनशील गजब की ! चित्रकार जैसी पारखी नजर। लेकिन केवल नौंवी तक पढाई कर पाई। कोंकण के ब्राह्मण परिवारों में यही तो कहानियाँ हैं। अशिक्षित, पति-समर्पित पलियों का पालना हर वर्ष डेढ वर्ष में चलने लगता है। पहली लडकी हुई तो नूतन प्रसूता माँ और छोटे भाई बहनों की देखभाल उसी के जिम्मे आती है। फिर कहाँ की पढाई ? जैसे ही अठारह वर्ष पूरे हुए, विवाह मंडप में उसकी रवानगी हो गई।

रेखा के पास कोई चारा भी तो नहीं था। केवल एक नारियल के साथ कन्यादान स्वीकार करे ऐसा दूसरा ब्राह्मण लडका कहाँ मिलेगा ?

और लडका भी कोई ऐसा-वैसा नहीं। अपना घर है। अब अलग बात है कि भोजनगृह चलाता है - लेकिन इसका यह अर्थ भी है कि दो जून रोटी कहीं नहीं जाती - देह को पूरा कपडा मिलता रहेगा। घरमें केवल लडका और माँ। ननद - देवर का कोई झंझट नहीं ! अब औरत जात के लिये इससे अधिक क्या चाहिये?

दिनकरराव को रेखा ने भी देखा था। हाँ, ना कहने का प्रश्न ही नहीं था। घरसे खानेवाला एक मुँह कम हो

जाय, यह पहली आवश्यकता थी।

लेकिन दो पहर नदीके घाट पर सारे कपडे धो चुकने के बाद एकान्त देखकर रेखा जी भर के रोई थी। फिर सपनों के सजीले अनदेखे राजकुमार को मन की अतुल गहराइयोंसे निकाल कर हलके से नदी की तरंगोपर उतार दिया। निराशा का कंबल ओढाकर उसे विदा कर दिया - दूर दूर बह जानेके लिये।

रेखा की तुलना में दिनू कहीं भी तो नहीं था। काला, भद्देपन की ओर झुकता हुआ चेहरा। तिसरी कक्षा पास ! लेकिन बाप के जमानेके भोजन-गृह से पैसा आ रहा है, इसीसे उसमें रम जानेवाला - अस्ताव्यस्त फैला हुआ शरीर, वैसी ही विचार ! उसने भी देखा - दान-दहेज का मोह न करे, तो लडकी सुंदर थी - दस आदमियों का घर संभाल रही है - तो सौ ग्राहक भी संभाल लेगी।

फेरे लेते हुए रेखाने मैके का हुंकार स्पष्ट सुना - जो कह रहा था - चलो एक लडकीसे तो जान छूटी ! उस हुंकार ने उसके सारे भाव बंधन जला दिये जो एक नाजुक दिल में हो सकते हैं। इधर ससुराल के प्रतीक रूप जो गांठ उसके आँचल में पडी हुई थी वह भी दमघोंटू ही थी, लेकिन आजतक अप्राप्य रेशमी वस्त्र की सुगंध ने उसे थोडा धीरज दिलाते हुए संभाल लिया था।

शीशे से छिटककर नाचते हुए धूप के टुकडे की तरह यादें उसके साथ आंख मिचौली खेल रही थी। मन को समेटते हुए उसने घडी देखी। दो बज रहे थे। यानि ग्राहकों का समय खतम ! अब घर के लोग खायेंगे। पति और सास तो सुस्ताने चले जायेंगे लेकिन उसे सारे बरतन साफ करने हैं। चूल्हे पर गोवर - मिट्टी की लिपाई करनी है । सारे अन्न - पदार्थ ढाँक कर रखने है। लेकिन उसके बाद..... उसके बाद वह होगी और होगा वही पेड - उसका अपना।

आज कुसुम से कहूँगी थोडी ज्यादा लकडियाँ तोडे - उतना ही समय होगा उससे सुख दुख बाँटने का।

रेखा थोडी सी खिल उठी । जल्दी से थालियाँ सजाकर उसने सास और पति को आवाज दी।

"माँ, आज मंदिर में बडा अभिषेक है। बीस लोग ज्यादा होंगे पंगतमें -जरा जल्दिसे रसोई शुरू करवाना। "

"रे दिनू, रसोई का क्या है रे ! मैंने डेढ दो सौ लोगोंका भी खाना बनाया है। लेकिन अपनी इन महारानी से कहो - नदी से जल्दी लौटेगी ! अब मुझे बूढी से इतना काम नहीं होता है रे !'

" ये भी क्या चक्कर है ? कह क्यों नहीं देती कुसुम से कि रेखा नही जायेगी नदी पर !"

"अरे, आदमी को जोड कर रखना पडता है बाबा, दोनों जनीं नदी पर जायेंगी, तो उतनी ही ज्यादा लकडी लायेंगी - उससे रसोई में ईंधन की बचत होगी। नहीं तो अकेली कुसुम जितनी लाये उतने भर से क्या होता है ? रोज पच्चीस आदमी के स्नान के गरम पानी के लिये लकडी चाहिये बाबा !"

" तो उससे कहो बालू को ले जायेगी - क्यों रेखा को ले जा रही है ? पिछले चार दिन से देख रहा हूँ।"

बालू गया है तहसील में बुआ के घर - उसकी परीक्षा का सेंटर है वहाँ। आ जायेगा - दस बारह दिनों की तो बात है। मुझसे पूछकर ही ले जा रही है कुस्मी - मैंने भी कहा ले जाओ ! दो बोझ ज्यादा लकडी तो आ जायेगी घर में !"

"ठीक है, वरना विदुषी जी तो कुछ किताब विताब लेकर बैठ जाती हैं, उससे तो यही अच्छा ! रेखा की ओर देखते हुए दिनू भात में दही मिलाने लगा।

खाना हुआ, साफसफाई भी हुई। फिर स्कूल की आधी छुट्टी में जिस उत्साह से बच्चे निकलते हैं, उसी उत्साह से साडी ठीक - ठाक कर रेखा कुस्मी के घर तक आ गई।

कुसुम उसीकी राह देख रही थी । गडाँसी उठाकर एक डबल पान मुँह में ठूँसते हुए उसने रेखा से पूछा - "क्यों भौजी, हो गया खाना-वाना ?"

"हाँ ! बरतन भी कर लिये।"

"दिनू को औरत बाकी अच्छी मिल गई काम के लिये। क्यों भौजी, इस साल हमारे लिये कोई लड्डू - वड्डू का इन्तजाम है कि नहीं !"

"चल हट, तू कुछ भी बोलती है।"

"कुछ भी कैसे, अब छह महिने हुए ब्याह को। अब क्यों न तैयारी हो ?

बातों बातों में गांव पीछे छूटा। दोनों नदी की ओर बढ रही थीं। मिट्टी की राह लेकिन रेखा को वहीं किसी सुंदरी के सीधे मांग जैसी लग रही थी। दोनों ओर कंटीली झाडियाँ और दहिनी ओर नदी पर बना विशाल पूल ! पूल की कमान से गुजर कर पनघट की सीढीयाँ, और वहीं पर उसका वह सजीला पेड।

रेखाने दौडते हुए सीढीयाँ पार कीं । नीचे झुककर नदी के पानी को एक बार थपथपाया - जैसे मंदिर में जाते हुए कोई धंटी बजा दे । कुसुम पीछे पीछे थी लेकिन अब रेखा उसका अस्तित्व भूल चुकी थी ।

"बस भौजी, लग गई तेरी समाधी ? अब बैठी यहीं पर ! मैं लकडियाँ तोड लूँ तब तक ! लेकिन पानी में ज्यादा नीचे नहीं उतरना । फिर रेखा के अनमनेपन पर आश्चर्य करते हुए वह आगे बढ गई ।

रेखा को भी और किसी बात का भान नहीं था । सब कुछ भूलकर वह उसी पेड को देख रही थी।

अहा, कैसा सलोना रूप था । बमुश्किल उसकी कमर तक उँचाई का । टहनियों की रचना किसी मंदिर के दीपमाला की तरह ! गुच्छेदार सुआपंखी पत्तियाँ ! छोटी छोटी सांवली टहनियाँ आकाश की ओर उठी हुईं । और . . . वही, वही जादूभरी रचना ।

पेड के ठीक बीचो बीच से फूटी हुई जडें । जमीन को जाती हुईं। उँगलियों जितनी मोटी। यदि सारी टहनियाँ पत्तों की कंधेपर लिये आकाश को जाती हों तो जायें, पेड को संभालनेके लिये हमें जमीन की ओर ही जाना पडेगा -ऐसी समझदार ! चारों ओर से फूट फूट कर जमीन को जाती वे जडें ! हर जड को जैसे नाप-तोल कर गढा गया हो । उनके कारण वह पेड किसी भरे भरे गोकुल की तरह खिल कहा था । या, मानो पंढरी का विठोबा, दोनों हाथ कमर पर धरे अपनी सृष्टि का कौतुक देख रहा हो !

क्या यह भी गूलर जाती का पेड है ? रेखा को पेडों की इतनी पहचान तो नहीं थी । जब 'बालकवि' ने "औदुंबर" कविता लिखी तो क्या उनका "औदुंबर" भी कुछ इसी तरह था - "सांवले पानी में पैर डाल कर ध्यानस्थ बैठे बालक की तरह ?" क्या उसने भी बालकवि के मन पर इसी तरह जादू किया होगा? लेकिन मैं कोई कवि या लेखक तो नहीं कि इसके वर्णनों के पुल बाधूँ ! हाँ, कोई अच्छा फोटोग्राफर हो तो वह इस सौंदर्य को पकड सकता है। लेकिन इस छोटे से गांव में कहाँ से आयेगा फोटोग्राफर ? लॉज में ग्राहक आते हैं । उनके पास होते हैं कॅमेरे - लेकिन उनका ध्यान होता है केवल मंदिर के फोटो खींचने में या आदमियों के ! इस आनंदमूर्ति से उन्हें क्या मतलब ? क्या करूँ मैं तेरा ? उसने उसी पेड से पूछ डाला।

आनंद की एक तेज लहर रेखा के मन में दौड गई । किसी को तो बताऊँ इस पेड के बारे में । कोई तो होगा पारखी ! कोन करेगा मेरे साथ साझेदारी, इस सौंदर्य बोध की ? किसी के साथ अपना रहस्य बाँटनेके लिये रेखा अधीर हो उठी ।

किसे दिखाऊँ? क्या दिनू आयेगा ? हट्, सारा दिन ग्राहक और उनके हिसाब देखने के बाद सिगारेट और टी.वी. पर दो सिनेमा - यही टाईम पास उसके लिये काफी था। फिर शादी की, एक पत्नी ले आया - वह एक और टाईम पास !

कमल के पत्ते से जैसे पानी की बूँद फिसल जाती है - बिना उसे भिगोये - उसी तरह रात फिसल जाती है रेखा के आँचल से --- बिना कहींसे छुए ।

फिर कौन ? क्या सासू जी ? हुँह, वह बूढी कैसे आएगी यहाँ? वह तो सोचती है कि कुस्मी के साथ जंगल आने से मुझपर कोई प्रेतात्मा चढ गई है । रोज ओझा बुलाने का संकेत देती रहती है। लेकिन चलो, आने पर नहीं लगाई पाबन्दी । अभी कुस्मी के बेटे की परीक्षाएँ खतम हो जाती हैं । फिर कैसे आ पाऊँगी मैं यहाँ ? लेकिन कभी कभी तो कोई बहाना ढूँढ कर आया जा सकता है ।

एक गहरी, अबूझ ममता लिये रेखा उठी और नदी में उतर गई । साडी को ऊपर खींचते हुए, घुटनों तक पानी में चलकर वह उस पेड के पास पहुँची । उसकी छोटी - छोटी पत्तियों, नटखट टहनियों और समझदार जडों को सहलाया । उसकी निश्चयपूर्ण जीवनेच्छा से वह अभिभूत हो गई । क्या इसे ऐसेही उठाकर ले जाया जा सकता है ? कौन मदद करेगा ? लेकिन नही, ले जानेसे क्या ? कौन है जो उसके नजरिए से पेड को देख सके ?

दूर से देखा, कुस्मी उसीकी दिशा में चली आ रही थी । वह भागकर वापस नदी के किनारे पहुँच गई । वापस मुडकर व्याकुल नजर से ही पेड को देखा - जैसे गाय अपने बछडे को देखती है । "फिर आऊँगी रे" कहकर वह मुड गई।

ठीक तो है - कुस्मी को उसकी मनोदशा का पता नही चलना चाहिये - वरना गाँव में तुरंत बात फैल जायगी कि दिनू की बहू बौराई है ।

रात में भी लॉज पर वही रोज की हडबडी । लेकिन पंगत में बैठा 'वह' कुछ अलग ही लग रहा था। दूसरे दिन भी खाने पर भी ध्यान नहीं था उसका। जल्दी से कुछ निवाले मुँह में डालकर, हाथ धोकर वह आंगन के कोने में बिछी चटाई पर चला गया । सामने उसका कॅनवास ! उसपर सधे हाथों से रेखाएँ उतर रही थीं । पंगत में रोटी परोसते हुए भी रेखा का ध्यान उसी की तरफ था । ब्रश अपने रंगों में डूबा हुआ था । कॅनवास पर जो उतर रहा था - रेखा चौक गई । अरे, यह तो उसी के गाँव की नदी हे, और उसी नदी का पुल । फिर वह पेड? क्या उसे भी पकडा है कॅनवास में ! जानने के लिये रेखा व्याकुल हो उठी । जिज्ञासा चरम सीमा पर पहुँची । रेखा ने आंगन में दो चार चक्कर लगाये । दिनू और सास की नजरें बचाते हुए ।

कॅनवास पर बार बार उतरती परछाई से चित्रकार का भी ध्यान खींचा । अच्छा भला घरेलू वातावरण है सुनकर वह इस लॉज में आया था। रात को लगा की रहने की व्यवस्था भी ठीक ठाक ही है। फिर यह महिला - महिला क्या, कोई लडकी ही मालूम पडती है - क्या देख रही है, क्या चाहिये उसे ?

उसकी नजर में उभरते प्रश्नचिन्हों से रेखा गडबडा गई । "ये हमारे ही गाँव की नदी का चित्र बना रहे हैं ना आप ? मैंने पहचान लिया । ओ हो, कितना सुंदर चित्र है। बिलकुल ज्यों का त्यों ।

" आं ? हां हां, मुझे बहुत पसंद आई वह जगह । शाम को घूमते घूमते उधर निकल गया था - तभी से मेरे मन में बस गई थी ।"

रेखा ने आँख के कोर से अंदाज लिया - दिनू या सास कहीं नहीं थे । थोडी ढिटाई से पूछा - एक बात कहूँ, आप नाराज तो नहीं होंगे ?

"नही, नही, नाराज क्यों, कहिए, क्या बात है ?"

"आपका यह चित्र ना, थोडा अधूरा है । उसमें . . . "

"रेखा, दाल परोसो . . .. "

दिनू की हांक सुनकर रेखा फुर्र से भागी.

चित्रकार ने अपना कॅनवास छोड दिया । अब यह अधूरापन जाने बिना नहीं होगी उससे कोई चित्रकारी ! वह अस्वस्थ हो चला । उसके चित्रों पर भी मत देनेवाला कोई इस छोटे से गाँव में मिल जायगा - एक सादी सी गृहिणी - उसने कभी सोचा ही न था । फिर कब मिलेगी वह, कहाँ ? वैसे काफी डरी दबी सी लग रही थी । बार बार इधर उधर देख रही थी ।

रातकी पंगत और खाना हो चुकने के बाद रेखाने रसोईघर के सारे काम पूरे कर लिये । कल के लिये लोबिया भिगो दी और रातके लिये लोटेमें पानी भर रही थी कि सास ने आवाज दी -

री बहू, जरा बारह नंबर वाले मेहमान के कमरे की साफसफाई कर दे - धुली चादर, गिलास, पानी, साबुन रख दे । यहा मरा दिनू जाने कहाँ चला गया सिग्रेट फूँकने ।

इस हुकुम की ताबेदारी अच्छी लगी रेखा को । झाडू उठाये वह मेहमान के कमरे में आई ।

उसे देखते ही चित्रकार का चेहरा खिल गया । अधीरता से उसने पूछा - बताइये, कौन सी बात रह गई है मेरे चित्र में ।

हँस पडी रेखा । सधे हाथोंसे कमरेमें झाडू फेरते हुए उसने अपने प्रिय पेड का शब्द चित्र खींच डाला।

चित्रकार आश्चर्य से अवाक् हो गया। शब्द चित्र से केवल पेड ही नही, उसके साथ रेखाका भावनात्मक लगाव भी मूर्त हो उठा था । क्या उसे भी कॅनवास पर उतारा जा सकता है?

मुझे दिखायेंगी वह पेड ?

हाँ, कल तीन साढे तीन तक तैयार रहिये । देर न हो । वरना अंधेरे में कैसे देखेंगे उसकी सुंदरता ? कल कोई उसके रहस्य में शामिल हो सकेगा, यही सोचकर रेखा के पाँव नृत्यमय हो गये । जल्दी से उसका

बिछाना तैयार कर वह अपने कमरे में भाग आई ।

वह आत्ममग्नता का भाव चित्रकारके मन में गहराई तक उतर गया।

नई सुबह रेखा के लिये एक अनोखी खुशी लेकर आई । आज वह अपना प्रिय पेड किसी पारखी की नजरों को सौंप सकेगी । उसके सारे काम आज जल्दी जल्दी पूरे हो रहे थे । वही चावल की हाँडी, वही रोटियोंका ढेर, पर आज उसे जरा भी नही थका पाये । पंगत उठी, खाना खाकर दिनू हिसाब लिखने बैठा और सास सोने चली गई ।

आज कुस्मी के द्वार पर रेखा के साथ साथ कंधे पर शबनम बॅग लिये चित्रकार भी था । कुस्मी थोडा अचकचाई ।

ये मेहमान कौन है आज अपने साथ? मैं मुंबई के कालेजमें चित्रकारी सिखाता हूँ। आपके गाँव में देवता के दर्शन करने आया था। इनके लाज पर ठहरा हूँ - उसीने उत्तर दिया।

कुस्मी ने मन में सोचा - भौजी की सास ने भली अनुमति दे दी इसे मेहमान के साथ घूमने फिरने की ! मरें दोनों, मुझे क्या ?

मौन, तीनों चल रहे थे । नदी का पुल आते ही रेखा सबसे आगे हो गई। सीढीयाँ उतरने लगी। कुस्मी आदत के अनुसार लकडियाँ तोडने सामने झाडियों में घुस गई।

रेखा अंतिम सीढी तक उतर गई। बगल में पहुँचे चित्रकार का एहसास हुआ तो मौन ही उसने अंगुली निर्देश कर दिया अपने पेड की ओर। उसकी आँखोमें आनंद अब झिलमिलाते मोतियोंका रूप ले चुका था।

अबतक चित्रकार एकटक उसके चेहेरे के मनोभावों को ही पढ रहा था। वहाँ से नजर हटाकर उसने अंगुली की दिशा में देखा। और ठगा सा रह गया।

प्रकृति से इतना कोमल, सुंदर साक्षात्कार ! विजिगिषु वृत्ती ये खडा वह पेड मानों सारे चराचर को ललकार रहा था।

"मार्व्हलस्, व्हेरी ब्युटीफुल !" जितने कोणोंसे पेड देखा जा सकता था, देख लेने के बाद चित्रकार ने अपनी शबनम बॅग कंधेसे उतार कर सीढीयों पर रखी। पँट के पायंचे मोड कर ऊपर कर लिये, और चप्पल उतार पानी में उतर पडा।

रेखा भरपूर नजर से उसे देखती रही। पेड के पास पहुँचकर उसने पत्तों को अपने हाथों की अंजुरियों में भर लिया। टहनियाँ और जडे सहलाईं। उन्हें सूँधा । देर कर उनपर हाथ फेर लेने के बाद वापस आया। "सच, क्या ही सुंदर और कितनी प्रतिकूल परिस्थितियों में दृढतासे खडा है यह पेड !"

"मुझे तो यह कमर पर हाथ धेर विठोबा जैसा लगता है।" सीढीयों पर बैठते हुए रेखा ने कहा।

वह भी थोडी दूरी रख कर बैठ गया। "और मुझे लगा जैसे ड्राइंग हाल में टी पॉय पर किसीने ये टहनियाँ रख दी हो।"

"ओ, कितनी अलग कल्पना है, हम लोग इस प्रकार कल्पनाओंकी अंताक्षरी भी खेल सकते हैं।" रेखा खिलखिला कर हँस पडी। हँसी पूरी तरह उसकी देह भाषा में प्रतिबिंबित हो रही थी। पेड के साथ निश्चय ही उसका रिश्ता वैसा ही हो गया था जैसा किसीका अपने बिल्कुल सगे के साथ होता हो। उस हँसी का प्रतिबिंब शतगुणित होकर उसके चेहेरे पर भी उतर आया।

चित्रकार ने अपनी स्केच बुक सामने खींची और तन्मय होकर पेड को कागज पर उतारने लगा। कलका अधूरापन पूरा करना था। रेखा ने भी उसे डिस्टर्ब नहीं किया । चित्र पूरा हुआ और दोनों फिर एक बार स्तब्ध हो गये। एक दूसरे की भाव समाधी को तोडने की पहल कोई नहीं कर सकता था।

दूर से कुस्मी ने उन्हें वैसा बैठा देखा और एक कीडा रेंगता हुआ उसके दिमाग में सरसराने लगा।

"एक घरेलू औरत का पराये पुरुष के साथ इस तरह बैठना, हँसना ठीक लक्षण नहीं है।" वह पुटपुटाई।

कुस्मी पास आई तो रेखाने उससे कहा - "तुम चलो, मैं पीछे से आ ही रही हूँ इनके साथ।"

"पर तुम्हारी सासू ?"

"हाँ री, बस आ ही रही हूँ मैं ! चलो तुम !"

मुझे क्या लेना है?" कह कर कुस्मी आगे निकल गई।

उसकी तरफ देखकर रेखा को हँसी छूटी। आज सुबह से उसे बार बार हँसी छूट रही थी। एक नजर चित्रपर डाल कर उसने कहा - कितना हू बहू चित्र बनाया है आपने !

"पसंद आया?"

"बहुत !"

चित्रकार ने थोडा सा आगे झुककर चित्र को उसके सामने किया -

"मेरी तरफ से आपकी पारखी नजर को स्नेहपूर्वक भेंट !"

"ओ:! मुझे क्यों? रेखा अपना हर्ष छुपा नहीं सकी।

"आपने भी तो मुझे इतनी अच्छी भेंट दी ! और चित्र का क्या ? वह तो मैं कभी भी बना लूँगा।

"धन्यवाद! सच, मैं बहुत कृतज्ञ हूँ।" रेखाने चित्र हृदयसे चिपका लिया, और एक अनाम भावना से उसने चित्रकार की चरणधूली ले ली।

क्षणभर चित्रकार भी अवाक् रहा। फिर पत्तियों के रंगकी किनकिनाती हरी चूडियाँ देखकर उसे कुछ बोध हुआ । उसके सर पर आशीर्वाद का हाथ रखते हुए बोला - "ऐसी ही पारखी नजर जिंदगी भर टिकाये रखना, यही मेरा आशीर्वाद है।

एक अबोध संतोष में भरकर दोनों घरकी राह चलने लगे। रेखा चहचहाती रही, हँसती रही ।

आँगन में पहुँचते ही सारा परिवेश बदल गया। कुस्मी सास के पास खडी थी और उनकी आँखोंसे अंगारे बरस रहे थे। दिनू दरवाजे की चौखट पर लदा हुआ था। खींचे हुए होंठ! माथे की नसें तनी हुई।

रेखा काठ हो गई। भय से पीली पड गई। फिर भी थोडा साहस संजोकर बिनती के सुर में दिनू से कहा - "देखा ! कितना सुंदर चित्र ? मैं . . . "

नालायक, बेशरम ! ये ही धंधे करने थे? दिनू की सनसनाती झापड उसके गाल पर पडी।

दिनू बेटे, पहुँचा दो मैके इस कुलटा को। भली देखकर ले आये थे। लेकिन भोजन गृह में यही धंदा होता रहा तो एक दिन बंद हो जायेगी हमारी कुलीन मेस !

टर्र से फाड डाला दिनू ने उसके हाथका चित्र !

चित्रकार को लगा उसे कुछ कहना चाहिये। लेकिन तभी दिनू उसके पास पहुँचकर चिल्लाया - ओ मेहमान, चलो उठाओ अपना सामान और चलते बनो ! यह सभ्य लोगोंकी मेस है। मुंबै नही है। क्या समझे? यहाँ की बहू बेटियाँ बाजार में नहीं बैठाई हमने !

लेकिन मिस्टर, सुनिये तो . . . , चित्रकार नरमाई के सुरमें बोला !

"कुछ भी मत बोलिये ! सारे गाँव में हमारे मुँह छिपाने की जगह नही रखी आपने।" सास गरजी।

दिनू का गुस्सा और भी बढ गया। वापस रेखा की मुडकर धप्प से उसकी बाँह पकड कर झटका दिया।

रेखा लडखडा कर गिर पडी। दिनू जहाँ जहाँ हाथ - पाँव चला सका, उसे मारने लगा। रेखा के नवेली हरी चूडियाँ चूर चूर हो गई। आँख में असहायता के आँसू झलके, लेकिन मुँह से कोई भी आवाज नहीं निकलने दी उसने। उस हालत में भी आँखके कोने से चित्रकारको देख ही लिया। उसके चेहरे पर भी एक हताशा का ही भाव था।

अपना सामान लेकर चित्रकार चलने लगा तो दिनू ने उसका रास्ता रोक लिया - दो दिन के रहने खाने के सौ रुपये चुकते करो, फिर जाना कहीं भी अपना मुँह काला करने।

अपमानित चेहरे से चित्रकार ने सौ की एक नोट निकालकर दिनू की ओर बढाई और पाठ फेर ली । फिर भी दो आँसू उसके गालोंपर ढुलक ही गये। दिनू ने नहीं देखा क्यों कि वह नोट के असली नकली होने की जाँचमें लगा हुआ था। लेकिन वे आँसू रेखा की नजर से उसके मन की गहराई तक उतर गये । रुलाई से उसका शरीर गदगदाने लगा।

उठिये रानी जी ! रोते कलपते बैठनेसे रात की पंगत कैसे भोजन करेगी। रोटी कौन बेलेगा? तुम्हारा बाप ?

दिनू ने बालों से पकड कर उसे खडा किया और चूल्हे की ओर ढकेलते हुए गुर्राया - आज से तूने आंगन में भी कदम रखा तो टांगे तोड कर रख दूँगा।

धमकाते हुए दिनू बाहर निकल गया सिगरेट जलाने।

सूजी हुई आँखोंसे रेखा ने चूल्हा जलाया और दुखते हाथोंसे रोटियाँ बेलने लगी । दुख, दर्द और अपमान मन में नहीं समा रहे थे। जलती लकडी को छूकर उसने प्रतिज्ञा की - दुबारा कभी भी उस पेड की बात नहीं सोचूँगी। कभ्भी, कभ्भी नहीं।

रात हुई। सारे काम खतम कर भूखे पेट ही रेखा सोने आई। आँखे अब भी आँसुओं को रुकने के लिये नही कह रही थी। कल से वह नदी, वह पूल और उसका लाडला पेड, सब कुछ दूर हो जाने वाले थे। मार से भी ज्यादा इस वियोग का दुख उसे सालने लगा। आखिर वह अपने ससुराल में थी। मैके से सारी जडें उखाड कर आई थीं। इसी जमीन में उसे गड जाना होगा। नई जडें फूटेंगी तो यहीं से फूटेंगी।

रो रोकर आखिर थक गई। क्रोध के मारे दिनू ने अपना बिछाना आज बाहर आंगन में लगा लिया था। चलो, यह भी एक अच्छा ही हुआ। दर्द में भी रेखा को थोडी राहत मिली। पेड को मन से निकाल देनेकी प्रतिज्ञा को मनोयोग से आत्मसात करने का एकांत मिला। लेकिन पेड का लगाव जो पहले ही उसके रक्त माँस तक पहुँच चुका है, रेखा उसे कैसे हटाये ?

पेड से न मिला पाने के विचार से वह घायल हरिणी की तरह छटपटा रही थी। दिनू के पाशवी प्रहारोंसे अधिक दर्द इस प्रतिज्ञा से हो रहा था। उसी थकान में उसे नींद आ गई।

सुबह हुई। कमरे की दिवारें दिखें इतना उजाला फैला तो रेखाने बिस्तर समेटा। बिखरे बालों को कसकर जूडा लपेट लिया। कलाई पर अभी भी काँच की चूडियोंसे बने जखम गीले थे।

हाथ-मुँह धोकर वह रसोईघर में आई। पहले रोटियोंके लिये आटा गूँथ लिया। फिर चूल्हा जलाया।

लकडियाँ फिर एक बार सरसराकर जलने लगीं। लपटें लाहालाहा करती हुई ऊपर तक उठती चलीं। तवा लपटों से घिर गया। इधर रेखा का हाथ भी जल्दी जल्दी रोटियाँ बेलने के लिये घूमने लगा।

रसोई के दरवाजे से दिनू एकटक उसे देख रहा था। कल मार खाकर आज आ गई लाईन पर। अब हिंमत नहीं करेगी किसी के साथ रास रचाने। ह्याः! लेकिन कल रात खामखाही में आंगन में सोना पडा। बिलाव की तरह दबे पाँव दिनू उसकी ओर बढा और पीछे से लपेट कर उसे दबोच लिया।

इस आकस्मिक झटकेसे रेखा घबराई। सहारे के लिये आगे बढा उसका हाथ जलती लकडी को छू गया। उंगलियाँ जली तो हाथ आपने आप पीछे आ गया। आँखों में फिर से आँसूओंकी बाढ आ गई। डबडबाई आँखों के पीछे चूल्हे की लपटें ऐसी ही दिख रहीं थी जैसे अपनी जडों में लिपटा हुआ उसका पेड। जलती उंगलियों ने फिर से जताया कि आग की इन लपटों के साथ ही अब तेरा नाता है।

दिनू की देह के नीचे मसले जाते हुए उसकी अधमुँदी आँखोंने महसूस किया - यहीं है वह पेड, और मैं उसकी हूँ - नहीं, वह मैं ही हूँ। अभी अभी उसकी ऊपर जानेवाली टहनियाँ शुष्क, कठोर बन गई हैं और उन्होंने आग की तपिश को पकडकर उंगलियोंके माध्यम से पहुँचा दिया है - शरीर के भीतर - रक्त में खिलने के लिये.....

और जिन्दगी का शाप भोगने के लिये। वह पेड, अब इसी तरह अपना आधा शरीर पानी के बाहर रखकर शुष्कता से जीने वाला था। और आधा शरीर पानी के अंदर सृजन की जडें फैलाते हुए गहरे, और गहरे घँसनेवाला था।

लेखिका -- वैशाली पंडित, मराठी प्रकाशन - अंतर्नाद मासिक पत्रिका, पुणे,
अनुवाद -- लीना मेहेंदले, ई १८, बापू धाम, नई दिल्ली ११००२१